अनन्तर/जनसत्ता/८ अक्तूबर, २००६

नायगरा में इंद्रधनुष

ओम थानवी

उत्तरी अमेरिका जाएं तो शरद में जाएं। यह कहीं पढ़ा था। इस दफा अनुभव किया। ऋतु का चुनाव मेरा नहीं था। न्यूयॉर्क में भारतीय विद्या भवन में एक आयोजन था। टोरांटो एक मित्र के आग्रह पर गया। फिर न्यूयॉर्क से पूरे संयुक्त राज्य को लांघ कर हॉलीवुड, जहां चार्ली चैपलिन से कैविन कोस्टनर तक का नवरस संसार जाने कब से मुझे बुलाता था। पूरब में अतलांत महासागर से पश्चिम में प्रशांत महासागर के तट तक की यात्रा में थकान सिरे से गायब रही तो इसकी वजह शायद शरद की धूप थी। और चांदनी। किसी ने आगाह किया था, अब वहां हलकी ठंड होगी। गरम कपड़े साथ बांधे। वे बोझ साबित हुए। दिन में वहां सुहानी बयार थी, साथ में गुनगुनी धूप। और शाम को सरसरी सिहरन, जिसे किसी गरम ओढ़ने से ढंकने की हरगिज तबीयत न हो।

टोरांटो कनाडा का सबसे बड़ा शहर है। बड़ा और चौड़ा। झीलों-की-झील ओंतारियो की बगल में एक के बाद एक बसी उपनगरीय बस्तियों में पसरा हुआ। शायद इसीलिए महानगर होकर भी हरियाली बहुत है। लेकिन और शहरों में पहले स्थापत्य मेरा ध्यान खींचता है। टोरांटो ने इस मामले में हताश किया है। गॉथिक शैली की कुछ पुरानी इमारतें अंग्रेजी राज की याद दिलाती हैं। मगर नई बहुमंजिला इमारतें शीशों से अंटी हैं। वे एकरूप हैं। इसलिए नीरस हैं। इनके बीच ट्राम के तार शहर के केंद्र 'डाउनटाउन' के आसमान में कंटीली झाड़ियों की मानिंद उलझे हैं।

वहां सबसे ज्यादा देखी जाने वाली इमारत सीएन टावर है। उसे देखने- या वहां से शहर देखने- लोग कतार में जाते हैं। इस तरह के टावर कुआलालुंपुर से लेकर बेजिंग और स्टॉकहोम तक बड़े कुतूहल से देखे हैं। लेकिन हवा में तनी ऊंचाई बहुत देर तक आकर्षित नहीं कर सकती। ऊंची इमारतों में वाइट हाउस के सामने खड़े 'वाशिंगटन मॉन्यूमेंट' को मैं अब तक सबसे नीरस मानता था। लगा कि संचार टावरों की अवधारणा उससे ज्यादा कल्पनाहीन है। सही है कि मूलत: वे महज प्रयोजन साधने के लिए खड़ी की गई इमारतें हैं। पर इससे क्या! कला की अनुपम नजीर कुतुब मीनार भी तो किसी प्रयोजन के निमित्त ही तामीर की गई थी!

लेकिन शहर के स्थापत्य से हुए इस मोहभंग की सारी भरपाई मेपल के दरख्तों ने कर दी। मेपल कनाडा की पहचान है। झंडे तक में मेपल की पत्ती मौजूद है। ये पत्तियां हमारे चिनार की रिश्तेदार नजर आती हैं। वही आकृति और रंग। पत्तियों में पत्तियां। मेपल का पेड़ छोटा होता है। कश्मीर का चिनार बड़ा है। तुर्की और यूनान में जिन्हें मैंने चिनार समझा था, वे मेपल की जात के रहे होंगे। बहरहाल, टोरांटो की सड़कें मेपल से आच्छादित थीं। शहर से बाहर हम कस्बे की तरफ गए तो रास्ते में महामार्ग के दोनों तरफ मेपल की ही दुनिया आबाद थी। पुराने पत्ते झड़ चुके थे। नए पत्तों पर हरे के साथ नारंगी, भूरे, पीले और सुनहरे रंगों की आभा तारी थी। इस तरह कि पेड़ को आप किसी एक रंग से शायद ही पहचान सकें। करीब जाकर देखा। रंग गंध में ढल गए। उस गंध को भी कोई नाम नहीं दिया जा सकता। ऐसी महक कि उसे आप नथुनों में भरें, फेफड़ों में उतारें और मस्तिष्क से बचा रखने का यत्न करें। रूप, रंग और गंध का दिमाग से शायद वैर ही है! वे हमें महसूस होते हैं; सोचते हैं तो हाथ से निकल जाते हैं।

भारतीय मूल के लोग यों पूरे उत्तरी अमेरिका में हैं, पर कनाडा में ज्यादा हैं। क्या टोरांटो, क्या मांट्रियल और सुदूर वेंकूवर। इन प्रवासियों ने ही साबित किया है कि दुनिया छोटी है। क्षेत्रफल में मुल्क संयुक्त राज्य से बड़ा है, पर आबादी है केवल सवा तीन करोड़। भारतीय फौरन पहचाने जाते हैं। मानो यहां दूसरा पंजाब बसा हुआ हो। टोरांटो में तीन सांसद (समझें विधायक) भारतीय मूल के हैं। पंजाब के बाशिंदे मौज-मस्ती में जीते हैं। उनमें सौंदर्य-जिज्ञासा कम है। पैसे ने सौंदर्य की भूख को मार दिया है। भौतिक सुख उनकी परम उपलब्धि

है। मैंने अपने मेजबान से नायगरा प्रपात जाने की इच्छा जाहिर की। बोले, जरूर। लेकिन वे खुद अब तक वहां नहीं गए थे। मस्ती का यही आलम आगे अमेरिका में मिला। लॉस एंजलिस में मैंने एक मित्र से सैन डिएगो जाने वाली बस के बारे में पूछा। बोले, ''पता कर देता हूं, पर मैं अब तक वहां गया नहीं हूं। सुनते हैं जगह बहुत अच्छी है!''

टोरांटो से नायगरा कोई घंटे भर का रास्ता है। सड़क ओंतारियो झील के साथ-साथ चलती है और एक जगह दक्षिण में मुड़कर हमें नायगरा प्रपात पहुंचा देती है। ओंतारियो के ठहरे हुए नीले पानी से नायगरा का कल-कल सफेद जल एक होकर भी बहुत जुदा है। पहले पानी झरने की तरफ सधी चाल से बढ़ता है, उफान लेता है और फिर अतल गहराइयों में जा गिरता है। आगे बढ़ता है तो ओंतारियो में जा मिलता है। प्रवाह के उस तरफ अमेरिका है, इस तरफ कनाडा। निस्संदेह कनाडा से प्रपात का दृश्य विराट और ज्यादा मोहक दिखाई देता है। कहना चाहिए प्रपात यहां सिर्फ दिखाई नहीं, सुनाई भी देता है।

नायगरा के तीन झरनों को नाम दे दिए गए हैं। सबसे बड़ा झरना 'घुड़नाल' की शक्ल में है। लेकिन मुझे लगा वहां तीन नहीं, कई-कई झरने एक साथ झरते हैं। जल से जल की अनवरत अठखेलियां अपनी कल-कल के बीच फुहारों की एक चादर हवा में तान देती हैं। कुछ धुंधली, कुछ दृश्यमान। हर कोई रस से भीगा मिलता है, अपलक झरने को तकता और पानी के शोर का लुत्फ लेता हुआ। कम मौके होते हैं जब शोर और संगीत की दूरी औचक पट जाए। बरसों पहले 'अज्ञेय' के साथ भेड़ाघाट की यात्रा की थी। तब वहां ऐसा ही सरस शोर सुना था। नायगरा में उस शाम झरने पर देर तक विशाल इंद्रधनुष भी देखा। वहां यह दृश्य आम है। न्यूयॉर्क और ओंतारियो को जोड़ने वाले पुलों में एक का नाम ही इंद्रधनुष सेतु है। भरी दुपहरी पुल पर खड़े हों और महसूस करें कि भोर में कोहरे की किसी गुफा में निकल आए हैं। ढलती शाम टु-द-फॉल्स के चबूतरे पर खड़े हों तो वहां भी पाएं कि अलस्सुबह कुहासे के उजास में नहाए बैठे हैं।

लेकिन नायगरा में प्रकृति का जादू जिस सहजता से सिर पर चढ़ता है, गर्दन घुमा कर पीछे क्लिफटन की पहाड़ियों को देखते हुए एकबारगी उतर भी जाता है। पूंजी के रोग ने इंच-इंच पर गगनचुंबी होटल, झूले और जुआघर खड़े कर दिए हैं। 'नायगरा' फिल्म शायद आपने देखी हो। १९५३ में बनी वह अपराध-कथा मर्लिन मुनरो की पहली बड़ी फिल्म थी। उसके पहले ही दृश्य में नायक नायगरा की तलहटी में खड़ा होकर कहता है: ''झरने सुबह-सुबह मुझे यहां क्यों खींच लाए हैं? यह दिखाने के लिए कि वे कितने विराट हैं और मैं कितना अदना? या यह जताने के लिए कि वे बगैर किसी सहारे के बहते रह सकते हैं- स्वाधीन- दस हजार साल से!'' नायगरा के झरने स्वाधीन होने का संदेश हैं; मनुष्य को छोटा बताने का कतई नहीं। मगर प्रकृति के सामने- यहां और वहां- व्यापार के मंडप खड़े कर हमने अपने आप को छोटा जरूर साबित कर दिया है।

नायगरा का कल-निनाद सुनने का मौका मुझे दो रोज बाद फिर मिला। आधी रात के वक्त। मुझे सुबह टोरांटो से न्यूयॉर्क की उड़ान पकड़नी थी। टिकट जेब में था। पर हवाई यात्रा में देखने को क्या मिलेगा। आठ घंटे में बस पहुंचाती है। मैंने बस पकड़ ली। नायगरा। पुल पार कर अमेरिका प्रवेश की औपचारिकता। फिर बफेलो। और न्यूयॉर्क जिले के कस्बों से होते हुए मैनहटन: हडसन दरिया के नीचे बनी लंबी सुरंग को पार कर सीधे बंदरगाह प्राधिकरण के बस अड्डे पर! वहां इंतजार कर रहे डॉ. जयरामन ने कहा, यह तो बड़ा रोमांच हो गया। मैंने कहा, न होता तो पछताता। अमेरिका के कस्बे नहीं देख पाता। न्यूयॉर्क शहर के बाहर छोटी बस्तियां, साधारण घर, गरीब मजदूर और ठसक से 'दो डॉलर' (नब्बे रुपए) मांगने वाले भिखारी भी हैं, यह भी कभी पता न चलता।

डॉ. पी जयरामन पचहत्तर वर्ष के हैं। वर्षों से न्यूयॉर्क में भारतीय विद्या भवन की मशाल थामे हुए हैं। कमोबेश एकला चालो रे। यों सहयोग और साथ देने वालों का बड़ा समुदाय उन्होंने तैयार किया है। विश्व हिंदी सम्मेलन के सिलसिले में आयोजित एक कार्यक्रम में मैंने इस समुदाय का अनूठा उत्साह देखा। सम्मेलन हमारा विदेश मंत्रालय करता है। अगला सम्मेलन न्यूयॉर्क में होगा। स्थानीय स्तर पर उसमें भारतीय विद्या भवन की मेजबानी होगी। डॉ. जयरामन का उत्साह इसमें बहुत है। विश्व हिंदी सम्मेलन का मकसद विदेशों में हिंदी

का प्रचार-प्रसार करना है। डॉ. जयरामन यह काम अपने बूते पर पहले से कर रहे हैं। इसके लिए हाल ही में राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने दिल्ली में उन्हें सम्मानित किया था।

विद्या भवन में कार्यकर्ताओं से बातचीत से समझ पड़ा कि विदेशों में हिंदी की हालत वाकई खराब है। बंगाली, गुजराती, पंजाबी या तमिल समुदाय के लोग अपनी भाषाओं को नहीं भूलने देते। लेकिन हिंदी भाषी समुदाय के वहां पले-बढ़े बच्चे हिंदी नहीं सीखते। माता-पिता के साथ वे अंग्रेजी बोलते हैं। हिंदी का माहौल नहीं है। 'संस्कार' देने के लिए माता-पिता उन्हें हिंदी फिल्में और टीवी सीरियल दिखाते हैं। इससे थोड़ी हिंदी वे समझ लेते हैं, पर पढ़ नहीं सकते। टोरांटो में तो मुझे हिंदी का एक अखबार भी दिखाई दिया था। अमेरिका में प्रवासी भारतीयों के सभी अखबार अंग्रेजी में हैं।

जयरामन ने प्रवासियों को हिंदी सिखाने का बीड़ा उठाया है। हालांकि वे खुद दक्षिण के हैं। रिजर्व बैंक की अपनी सेवा के अनुभव का लाभ दूसरों को दे रहे हैं। स्वैच्छिक निवृत्ति लेकर वे पच्चीस वर्ष से न्यूयॉर्क में हैं। उनकी पत्नी तुलसी जयरामन हिंदी की विदुषी थीं। वे नहीं रहीं। इसलिए घर का वक्त भी अब भवन को मिलता है। फिलहाल कोई सवा सौ जिज्ञासुओं को हिंदी पढ़ाते हैं। इनमें आधे से ज्यादा विद्यार्थी भारतीय मूल के हैं। डॉ. जयरामन भारतीय दूतावास में भी हिंदी पढ़ाने जाते हैं। उनकी मेहनत के नतीजों की झलक भवन में (अंग्रेज) यस्टर लोयनगाठ की हिंदी में मिली। वे हिंदी में इतना रच-बस गई हैं कि अपना नाम भी कल्पना रख लिया है। जयरामन अब कोशिश कर रहे हैं कि हिंदी के प्रसार के लिए अमेरिका में प्रयासरत संस्थाओं को एक मंच पर ले आएं। ऐसा हो सका तो निश्चय ही यह बड़ा काम होगा।

बेहतर स्थापत्य और नगर-नियोजन से शहर का चेहरा बनता है। न्यूयॉर्क का दिल मैनहटन की ऊंची इमारतों में बसा है। सीधी और आड़ी सड़कों वाली 'ग्रिड' शैली में शहर बना है। आधुनिक वास्तुकला और खड़ी सड़कों में भी शहर का एक लुभावना रूप है। टोरांटो या हांगकांग जैसे शहर उसका मुकाबला नहीं कर सकते। ऊंची इमारतें खड़ी की जा सकती हैं, लेकिन शहर के चरित्र को जिंदा रखने के लिए एक आधुनिक कला संग्रहालय (मोमा) या मेट्रोपोलिटन संग्रहालय ही काफी होता है। इस दृष्टि से न्यूयॉर्क कभी नहीं बदलता। हां, टाइम्स स्क्वैयर की रंगत यहां जरूर थोड़ी बदली है। वह अब फूहड़ चौक नहीं रहा। कोशिश कर यह कलंक धोया गया है।

लेकिन एक चीज ने शहर का मिजाज बदल दिया है। वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की अट्टालिकाओं का जोड़ा अब वहां नहीं है। बरसों एम्पायर स्टेट इमारत और लिबर्टी की प्रतिमा न्यूयॉर्क की पहचान रहीं। बाद में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की इमारतें शहर का प्रतीक बन गईं; वहां के माहौल में ऊंचाई जल्द महत्त्व पा जाती है। जबकि एम्पायर स्टेट छोटी रह कर भी ज्यादा भव्य इमारत लगती थी। ग्यारह सितंबर के हादसे ने उसे फिर नगर की सबसे ऊंची इमारत बना दिया है। लेकिन किस कीमत पर, यह ढलते सितंबर की एक शाम मैंने हादसे की जगह- ग्राउंड जीरो- पर जाकर महसूस किया।

हडसन के तट पर नौ-ग्यारह के हमले की वजह से दरकी इमारतों के बीच वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की मिट्टी से सना मैदान अपने में दारुण दृश्य बन गया है। उसकी नींव के अवशेषों में एक विराट शून्य उभरा है। हादसे की जगह अब एक स्मृति-स्थल में तब्दील कर दी गई है। बच्चे और बूढ़े वहां गमगीन हो फूल चढ़ाते हैं। हादसे को पांच साल हो गए। जंगले के पार कातर नजरों से लोग मिट्टी और पत्थरों में दोनों इमारतों की यादें कुरेदते हैं। मानो कल्पना में उन दोनों इमारतों को फिर तामीर करते हों, जो पहले हों न हों, पर अब राष्ट्र की अस्मिता के चिह्न बन गई हैं। लोगों की पथराई आंखें देखकर लगता है जैसे हादसा कल हुआ हो। जैसे आज भी उन्हें भरोसा न होता हो। उनके चेहरों के रंग उड़े हुए हैं।

जंगले के बीचोबीच आतंकवादी हमले में मारे गए 'शहीदों' के नामों की लंबी सूची है। उसके दोनों तरफ हादसे की तस्वीरों की प्रदर्शनी है। पूंजीवाद हर चीज को भुनाता है। शायद ये करुण तस्वीरें 'इस्लामी आतंकवाद' (बुश का जुमला) के प्रति लोगों के मर्म को जगाती हों। इमारतों को टक्कर मारते विमान, भरभराती मंजिलें, बिलखते-भागते लोग, उड़ती खंख, अचानक मानवीय हो गए पुलिस वाले, हतप्रभ राहगीर। ओसामा

मण्डली इसे अपनी अब तक की सबसे सफल कार्रवाई बताती है। जबकि उसने न सिर्फ अमेरिकी समाज को– हिल जाने के बावजूद– एक कर दिया है, बुश राज की आततायी नीतियों को लोगों का समर्थन पहले से ज्यादा मिलने लगा है। जाहिर है, आतंकवाद जिसे अपनी जीत समझता है वह उसकी बड़ी हार है; जिसके नतीजे वह भुगते न भुगते, मानवता भुगत रही है और वह दुनिया भी जिसमें आतंकवादी गुमराह हैं।

ग्राउंड–जीरो के इर्द–गिर्द चहलकदमी करते हुए मेरा मन उन निर्दोष लोगों के लिए भीगा जो अभागे हादसों में दुनिया से उठ गए; उनके लिए भी जिनका संसार रोज घर लौटने वालों के एक शाम न लौटने पर हमेशा के लिए उजड़ गया।

चौदह साल पहले मैं कवि लाल्टू के साथ वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की बाईं इमारत की छत पर चढ़ा था। तब से दुनिया कितनी आगे निकल आई है। और कितनी नीचे चली गई है।

फोटो कैप्शन

१. टोरांटो का सीएन टावर: कल्पनाहीन वास्तु
२. नायगरा प्रपात की बौछारों में ठिठुरती तीन स्त्रियां
३. न्यूयॉर्क में ग्राउंड–जीरो: दारुण स्मृति

फोटो: ओ.था.